UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180601

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6/V69A Accession No. G.H.182

Author विजयवर्गीय, रामगोपाल।

Title अलकावली। 1946

This book should be returned on or before the date last marked below.

अलकावली

लेखक—

रामगोपाल विजयवर्गीय

कहानीकार कवि लेखक तथा चित्रकार

प्रकाशकः—

विजयवर्गीय कलामण्डल

जयपुर

१९४९

कीमत २)

विषय सूची

G.H.1824

पहिली	१
दूसरी	२
तीसरी	५
चोथी	८
पाचवीं	११
छठी	१४
सातवीं	१६
आठवीं	१८
नवमीं	२०
दसवीं	२२
ग्याहरवीं	२४
बारहवीं	२८
तेरहवीं	३०
चौदवीं	३२
पन्द्रहवीं	३४
सोलवीं	३६
सत्रहवीं	३९
अठारवीं	४२
उन्नीसवीं	४४
बीसवीं	४६
इक्कीसवीं	४९
बाईसवीं	५३
तेवीसवीं	५५
चौवीसवीं	५८
पचीसवीं	६१
छबीसवीं	६३

Checked 1969

भूमिका

ये कवितायें जहां तक मेरा अनुमान है मेरे अन्तर की प्रति च्छाया ही पाठकों को दिखलाई पड़ेंगी, और हैं भी। काव्य कवि की आत्मा का प्रतिविम्ब होता है, पर तब भी प्राय: उसे देश काल, मर्यादा और सामयिक परिस्थितियों का विचार करना पड़ता है जो सर्वथा विचार करने योग्य है, मैं जिन कविताओं को सामने रख रहा हूँ वे सच मुच वर्तमान युग के अनुकूल नहीं जब आदमी के सम्मुख रोटियों का प्रश्न है जब आदमा आँधी में उड़े हुवे तिनके की तरह बे घरबार विपत्तियों का बोझ लेकर जीवन की घड़ियें गिन रहा है, जब आह और कराह की ध्वनियों से कान बधिर हुवे जाते हैं ये कैसा विपरीत राग ? य कैसे सुनहरे स्वप्नों की याद, प्रेम और मिलन की बातें ?

किन्तु मैं अपने आप को विवश पाता हूँ मैंने कविता लिखने का प्रयास नहीं किया स्वयम कविता ने ही मुझे बाध्य किया है मैंने उसका दरवाजा नहीं खट खटाया और न मैंने सरस्वती देवी से प्रार्थना की कि तुम मेरे अन्तर में आकर विराजमान हो जाओ मैंने तो कहा था भगवती मुझ पर दया करो मैं आपके कृपा कटाक्ष का पात्र नहीं हुँ। मैं जो कुछ कर रहा हुं वह भी तुम्हारा ही आराधन है। पर वे तब भी यदा कदा कृपा करती ही रहीं जिसका परिणाम पाठकों के सम्मुख है। मैंने जो बात कहनी चाही कह डाली, कह लेने पर जान पड़ा कि इसे लोग कविता कहते हैं, अब ये

सच मुच कविता हैं या नहीं विद्वान पाठक ही अनुमान करलें। छपाई और अशुद्धियों का कारण कुछ विशेष परिस्थितियां हैं।

पाठक इलेक्ट्रिक प्रेस, चौड़ा रास्ता, जयपुर।

(१)

भरो वारुणी नयनों में
सुन्दरि अधरों पर अमृत रेखा।
आनन पर शोभा सरोज की
दशनावलियों में शशि लेखा॥
व्याकुलता का रचो जगत
युग युग के निद्रा लीन हृदय में।
नित्य सृष्टि करने दो सुख की
चिर वियोग के घोर प्रलय में॥
पुनः प्रतीक्षाओं के पथ में
मुझे भटकने दो शङ्कातुर।
दूर क्षितिज के पार मन्द से
झङ्कृत कर अपने पद नूपुर॥

क्षणिक दामिनी सी द्युतिकर
प्रज्वलित भावनाओं के घन से।
नव बसन्त के सौरभ सी
निकलो आशा के वातायन से॥
अपना सुन्दर रूप निहित कर
कभी निराशाओं के पट में।
लौट लौट कर जाओ लहरों सी
आकर भी अन्तर तट में॥
मार्ग प्रदर्शित करो दूर से
जलते हुवे क्षीण दीपक सम।
छाया रहने दो जीवन में
विरह वेदना का सञ्चित तम।

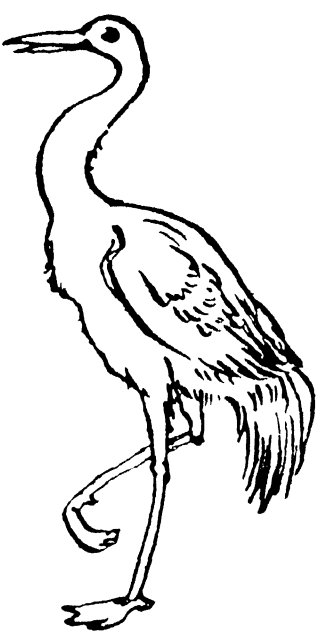

(२)

जब तुमने स्मित रेखाओं से
शशि किरणों की कान्ति बिखेरी।
जब कुछ कहते कहते ही
रुक गई कंठ में वाणी मेरी
तब तुमने चितवन से
मेरे अंतर में कुछ चित्र बनाये।
तब तुमने कविता कलाप के
चित्र विचित्र भाव लहराये॥
अधर सम्पुटों की रेखा में
अगणित रस समूह भर आये।
मौन लोचनों की भाषा में
तुमने कितने छन्द सजाये॥

वलयित कर भ्रू युग को किञ्चित
रास रचाया कभी मानका ।
अभिनय किया कभी वचनो में
मृदुता ले अमृत प्रदान का ॥
अन्तर व्यथा प्रकट करने को
जब मैं किंचित हुआ विकल सा ।
लज्जा का आवरण आगया
मेरे अधरों पर चञ्चल सा ॥
तब तुमने आनन पर एसी
भाव मयी रचना कर डाली ।
थी जिसकी प्रस्फुटित लालिमा
में भी घोर निराशा काली ॥
तुमने कितने रूप धरे
माधुर्य सुधा के अंग अंग में ।
मैंने देखा इंद्र धनुष सा चित्रित
उर पर विविध रंग मे ॥

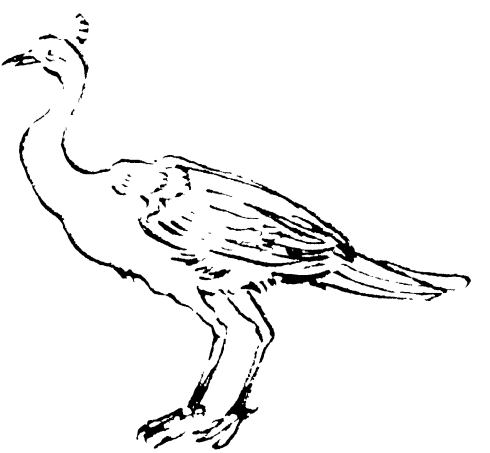

(३)

मेरे पथ में पड़े हुये है, कितने दीर्घ प्रतीक्षा के पल।
कितने दुस्तर, कितने दुष्कर, कितने आकुल कितने निश्चल॥
इनकी सीमा नाप सकेगा
किसी अवधि में आसमान क्या।
अतल गहनता होसकती है
सागर की इनके समान क्या॥

आवा गमन नित्य ऋतुओं का
इनका साहस देख चकित है।
इनके अंतर में कितने ही
प्रलयों का प्रसार सञ्चित है॥

ये स्रोतों की भांति जिस समय
महावेग से चले उबलते।
अग्नि शिखाओं से निकले जब
ये व्याकुल अन्तर मे जलते॥

उठी हृदय की आतुरता
इनका अस्तित्व मिटा देने को।
चली निराशाओं की सेना
इनका पोत डुबा देने को॥

किसी शस्त्र से इनकी आशाओं का कवच हुआ कब निर्बल।
मेरे पथ में पड़े हुवे है कितने दीर्घ प्रतीक्षा के पल॥

मंद वेग से मधुर कल्पना
विस्तारों में चले घूमते।
सुखद स्वप्न के दीर्घ मार्गों
में से निकले कभी झूमते॥

इनके पथ में दीप कामनाओं
के रहते हैं आलोकित
इनके उर में जीवन की अविराम
प्रगति धारा है नियमित॥

अस्तित्वों में इनके युग युग की
सञ्चित सी एक कथा है।
अश्रु विन्दु अङ्कित कर देती
ऐसी इनकी करुण कथा है॥

उत्सुकता से भरा एक सन्सार लिये रहता अन्तस्तल
मेरे पथ में पड़े हुये हैं कितने दीर्घ प्रतीक्षा के पल॥

(४)

अन्तर में उतरा करती जब
पल पल में तसवीर तुम्हारी।
बिना नींद के आंखों में ही
रात निकल जाती थी सारी॥

एक तुम्हारा चिन्तन ही
साथी रहता एकान्त समय में ।
कितना सुख मिलता अतीत के
विस्मृत विविध स्वप्न सञ्चय में ॥

होती थी उन घोर गरमियों की
ढलती सुन सान दुपहरी ।
एक व्यथा सी छाई रहती थी
आंखों में गहरी गहरी ॥

मौन, वृक्ष शाखा में बैठे
पक्षी नींद लिया करते थे ।
जलते हुवे मार्ग के ऊपर
पशु भी पाँव नहीं धरते थे ॥

स्वेद बिन्दु उस समय तुम्हारे
चमक चमक उठते आनन पर ।
सौरभ केश कलापों का
उड़ता रहता था मन्द पवन पर ॥

अंगडाई लेकर, ललाट पर
छाई अलकें दूर हटा कर ।
अस्त व्यस्त हुवे अञ्चल को
किञ्चित ऊपर को सरका कर ॥

प्रश्नकिया करती थीं तुम
अब कहिये क्या तसवीर बनायें ?
स्वप्न जगत में खोजाती थीं
मेरी आकुल अभिलाषायें ॥

(५)

मेरी चिर सञ्चित तृषित कामनायें उठती भर भर उमङ्ग ।
यह बिछा तुम्हारे पद तल के नीचे है मेरा अन्तरङ्ग ॥
इसका न करो तुम स्वप्न भंङ्ग

मेरी आशा कलिकाओं पर
प्रति पल मत करो तुषार पात ।
सन्ध्या की धूमिल छाया में
होने तो दो उज्वल प्रभात ॥

इन लघु लघु उठते अरमानों के
नयनों में है जल प्रपात ॥
इस रुप भरे रस सागर में
डूबा जाता है गात गात ॥

ये दीर्घ दीर्घ, ये उच्छृङ्खल उठ उठ आती मानस तरङ्ग ।
इनका न करो तुम स्वप्न भङ्ग ॥

मेरे दृग पथ में चित्रित हैं ।
कितने पत झड़ कितने वसन्त ॥
मेरे आकुल उच्छ्वासों से
परिचित सा यह विस्तृत दिगन्त ॥

मेरे अन्तर में एक सुरा की
मादकता है प्राणवन्त ।
मेरे वियोग में लय होजाने को
प्रस्तुत हैं युग अनन्त ॥

यह भावों का उड़ता अबीर लाया कुसुमों का नवल रङ्ग
तुम करो न इसका स्वप्न भङ्ग

रचते हैं कितने चित्र जगत
ये अगणित संकल्पों के दल।
मानो कि नीड़ से निकल चले हैं
विहग बाल अति चपल चपल

यह विकल स्रोत की धारा है
रोको न अधिक इसका कल कल।
यह पीड़ा भरी प्रतीक्षा है
पागल सा है इसका पल पल ॥

ये विरह गान जिनकी मादक लय में है पुलकित सा अनङ्ग।
तुम करो न इनका स्वप्न भङ्ग, तुम करो न इनका स्वप्न भङ्ग ॥

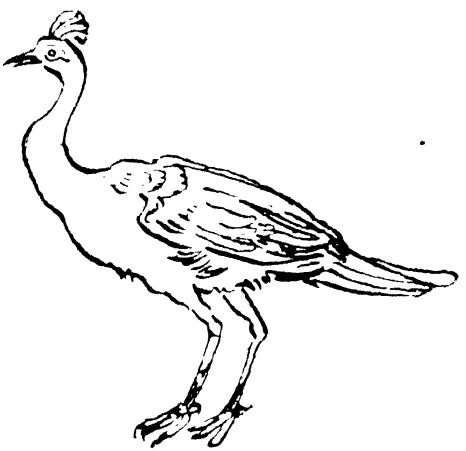

(६)

मेरी आशायें निकली हैं
सीमा लेकर निखिल गगन की।
इनके अन्तर में चित्रित हैं
कितनी सुषमायें उपवन की॥

ये करने अभिसार चली हैं
शून्य चन्द्रिका के अञ्चल में।
ये भरने उन्माद चली हैं
वर्षा के नव जलद पटल में॥

आंखों में अङ्कित हैं इनके
पहिली मादकता यौवनकी।
अधरों पर अलसाई जाती हैं
रेखायें मृदु कम्पान की॥

नील क्षितिज छूलेने को हैं
व्याकुल से इनके कर पल्लव।
पद चापों के साथ साथ
आतुरता का झङ्कृत नूपुर रव॥

ये निकली हैं लिये आज
सङ्केत किसी नूतन परिचय का।
इनके सम्मुख आया है
इन्मद वसन्त के मधु सञ्चय का॥

इनकी गति में हैं कितने ही
उडते चञ्चल वेग पवन के।
इनके पथ में भेद भरे है
अन्धकार मिश्रित निर्जन के

किसी अनिश्चित पुलक भार से
आनत सी है इनकी काया।
इनके रोम रोम में है अज्ञात
एक वीणा स्वर छाया॥

ये मराल मालाओं सी
कल्पना लोक में मंद मंद सी।
चलती ही जाती हैं प्रति पल
दीर्घ काव्य के सरस छन्द सी॥

---

(७)

नीर से बुझती न कैसी
आज प्राणों मे तृषा है।

आगमन जिसमें उषा का
है न, यह कैसी निषा है॥

वेदना है, एक रस का
स्त्रोत जिस की विकलता में।

वह निराशा है कि जीवन
ज्योति जिसकी अटलता में॥

यह विरह जिसमें प्रतीक्षा की
प्रकाशित दीप माला।

है मिलन कैसा कि।
जिसके अन्त में है एक ज्वाला॥

एक आशा है कि जीवित
हो रही है नित्य मर कर
हास यह कैसा कि जिसके
मूल में है रुदन का स्वर ।।
सुखद स्मृति संसार बस कर
क्यों उजडता है हृदय में ।।
सृष्टि का यह रूप कैसा
देखता हूँ मैं प्रलय में ।।

(८)

मेरे अन्तर में कहने को
उठ उठ कर आती कुछ बातें।
दिन की कुछ सूनी घड़ियां
कुछ साथ लिये तारों की रातें॥

ये लेकर आईं हैं अपने साथ
बुझी दीपक मालायें।
ये लेकर आई अधरों पर
अन्तर की जलती ज्वालायें॥

इनके साथ चला आता है
मुरझाये से कमलों का वन।

इन के साथ उड़ा आता है
आशा का उजडा सा उपवन ॥

मम वेदनाओं की सेना सी
आती है धूल उडाती ।
शङ्काओं की एक मण्डली
मानों साथ उपल बरसाती ॥

इन बातों के आशय में कितनी
आहों का धुआं निहित है ।
इन बातों के क्षीण उदर में
कैसा ज्वाला गिरि सञ्चित है ॥

ये कहने को हैं जीवन की
कोई ऐसी छुपी कहानी ।
जिनमें अङ्कित है कितने ही
आकुल अश्रु कणों का पानी ॥

इन बातों के पृष्ठ भाग पर
छाया रहता अन्धकार क्यों ।
ये बाहर आने के पहिले
करती हैं उर पर प्रहार क्यों ॥

बिजली की तड़पन जैसी
इनके स्वर में है एक विकलता ।
है समुद्र की दावानल सी
इनमें एक दबी विव्हलता ॥

(६)

इन वियोग ज्वालाओं में
घरका चिर मौन भस्म होने दो।

इन काली रातों मे आंखों को
जी भर भर कर रोने दो॥

एक वेदना सी अमृत मय
कर देती अन्तर को शीतल।

क्षीण गात होने जाने पर
भी तो मिलता रहता है बल॥

यह समुद्र है जिसमें किञ्चित
तरना नहीं डूब जाने दो।

मरने का साहस जीवन में
एक बार तो दिखलाने दो॥

ये है एसी व्यथा कि जिसको
सुख से हृदय लगा लेते हैं॥

शान्ति लाभ करने को किञ्चित
इसी आग सुलगा लेते हैं।

दिवस प्रतीक्षा ओं के पथ में
आंखों में कटजाती रातें।

ग्रीष्म काल श्वासों में
आंखों में छाई रहती बरसातें

प्रकट हास में छुपा लिया
करते हैं अपनी रुदन कथायें।

अपने ही अन्तर से अपनी
कह लेते हैं मर्म व्यथायें॥

---

(१०)

अधरों पर ले स्मित की रेखा
मेरे अन्तर में आओ तुम ॥
यौवन की मादक प्रथम
किरण सी आखों में बस जाओ तुम

नूतन वसन्त की सुषुशा सम
ले कुसुमों की शोभा अनुपम ॥
जीवन की ज्वालाओं में भी ।
सौन्दर्य सलिल बरसाओ तुम ॥
मेरे मानस में प्रेम भावनाओं के ।
दीप जलाओ तुम ॥
कम्पित हो पृथ्वी का कण कण ।
हो ऐसा आकुल आकर्षण ॥
सङ्केत नही सीमा का वह ।
गति शील मार्ग दिखलाओ तुम ॥
जो दूर जगत का आंखों से ।
वह स्वर्ग भूमि पर लाओ तुम ॥
बन शुभ्र चन्द्रिका सी उज्जल ।
ले नयनो में माधुर्य नवल ॥
छन्दों की गति के साथ साथ ।
सङ्गीत स्वरों में गाओ तुम ।
मैं कवि बनता हूँ और, सरस, ।
मेरी कविता बनजाओ तुम ॥

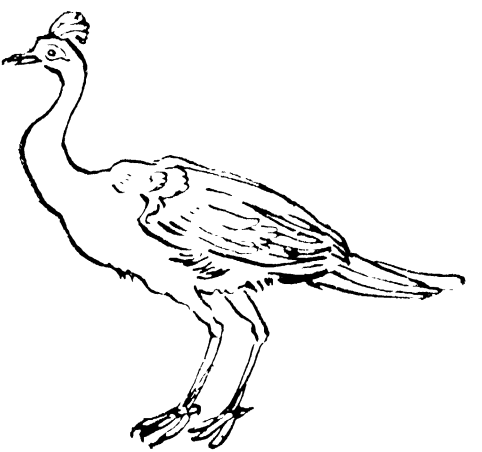

(११)

टूट गये वे स्वप्न मनोहर
प्रिये तुम्हारे और हमारे ।
जब हम उड़े नील अम्बर पर
पक्षी जैसे पङ्ख पसारे ॥

दिनकी उज्वल कान्ति, अंधेरी—
रातों को भर लिया नयन में।
यौवन के उन्मत्त क्षणों को
चित्रित देखा मन्द पवन में॥

खिलते कुसुम, चहकते पक्षी
चांदी भरी चांदनी रातें!
टूट गये वे स्वप्न कि जिनकी
स्मृति में शेष रह गई बातें॥

देखी थी मुक्ता कलाप सम
शोभा रजनी में तारों की।
शशि को उठ उठ कर देता था
सागर भेंट उर्मिहारों की॥

डूबा था संसार ज्योति के
उज्वल एक प्रभा मण्डल में।
हिम के शुभ्र हास का था
आवरण पुलक अवनी अञ्चल में॥

धवल शैल शिखरों के वातायन
से किञ्चित बढ़ा करों को।
खींच लिया अपने अन्तर में
नील गगन ने मौन स्वरों को॥

किया हृदय पर मेरे अङ्कित
तुमने कुसुम सुरभिश्वासों को।

केश कलापों में उलझाया
मैंने उसके उच्छ्वासों को ॥
लिया चांद तुमने हाथों में
हँसी अधर पर चित्रित करते ।
खोल दिया लज्जा अवगुन्ठन
धीरे से उर पर उर धरते ॥
लगा नृत्य करने चिन्तन के
साथ साथ तब मेरा अन्तर ।
टूट गये वे स्वप्न व्योम से
हुई सुधा की वृष्टि निरन्तर ॥
तुमने चुप रह कर भी—
आखों की भाषा में क्या न कहा था ।
चकित चित्त सा मौन साध
मैं केवल सम्मुख खड़ा रहा था ॥
ईषत् मन्द हास से तुमने
मर्माहत कर दिया हृदय को ।
मेरे रोम रोम में झङ्कृत पुनः
किया निज मादक लय को ॥
चिर वियोग में भी खेंची थी
मैंने मधुर मिलन की रेखा ।
मृत्यु और जीवन को एकत्रित
आलिङ्गित करते देखा ॥

एक दृष्टि में मेरे अन्तर के
सौ, सौ, टुकडे कर डाले ।
टूट गये वे स्वप्न कि
तुमने जी भर कर अरमान निकाले ॥

---

(१२)

उस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर
अङ्कित है जो चित्र तुम्हारा।
भावित कर देता है अन्तर में
स्मृतियों की चञ्चल धारा॥
जीवन के अस्थिर स्वप्नों में
अङ्कित देख तुम्हारा आनन।
उड़ जाने को अम्बर के उसपार
चकोर बना मेरा मन॥
शोभा के मुख पर लज्जा के
वारि भरे नीरद छाये थे।
रूप सरोवर के उर में से
रस के स्रोत निकल आये थे॥

मूर्तिमान हो उठीं मूक रेखायें
मेरी रूप बदल कर ।
कुछ मादक आवरण छागया
मधुर कल्पना के अञ्चल पर ॥
देख रंग से भरी तूलिका
तुमने किया निषेध दृष्टि से ।
रोष भृकुटि युग पर खिंच आया
क्षण में मेरी चित्र सृष्टि से ।
मैंने की तब क्षमा याचना
नत मस्तक अपराधी के सम ।
तुमने कहा धृष्टता ऐसी
किञ्चित सहन नहीं करते हम ॥
अधरों पर गम्भीर मौन फिर
अङ्कित करते रहे विनत दृग ।
देखा मेरी ओर कि जैसे
चकित खड़े रह गये भीत मृग ॥
मुख पर पुनः क्षीण रेखा सी
प्रकट हुई अस्पष्ट हास की ।
मधुर स्वप्न में डूब गई थी
दुनिया मेरे आस पास की ॥

---

(१३)

वह दिन भी है याद, कहा तुमने
मेरी आंखें कैसी हैं।
मैंने उत्तर दिया कि सम्भव
चञ्चल मृग शावकजैसी हैं॥

मृग शावक में और आँख में
कितना अन्तर कितनी समता।
पर तुमने स्वीकार कहाँ की
अपनी आंखों की उत्तमता॥

कुञ्चित भ्रू से उस उपमा को
मिथ्या बना दिया यह कहकर।
क्या अनर्थ उत्पन्न करेगा
आँखों में मृग शावक रहकर॥

कवियों के कल्पना जगत में
रहता चिराधार जग चित्रित।
ये कर लेते हैं अन्तर में
व्यर्थ भावनायें एकत्रित॥

खिन्न भाव से क्षण में तुमने
मौन किया कुञ्चित अधरों पर।
मेघ भरी दुनिया रच डाली
मृदु कपोल युग धरे करों पर॥

मादकता के भरे पात्र से
नयन पुनः कुछ छलक गये थे।
और हास के अमृत कण
अधरों पर किञ्चित झलक गये थे॥

❀ भाव ❀

(१४)

मौन कल्पनाओं को कविताओं की भेंट दिया करता हूँ
तुमसे भाव लिया करता हूँ

दृष्टि मार्ग में अङ्कित रहती
नयनों की चित्रित अलिमाला।
अन्तर को शीतल सा कर देती
जलती वियोग की ज्वाला॥

मैं वसन्त में भी पतझड़ का, चित्रित रूप किया करता हूँ।
तुमसे भाव लिया करता हूँ॥

चन्द्र बिम्ब मानो आनन पर
शुभ्र चांदनी मन्द हास में।
चम चम करते हैं तारक दल
चितवन के लीला विलास में॥

मैं चकोर सम मधुर मिलन का अमृत सिन्धु पिया करता हूं।
तुमसे भाव लिया करता हूँ॥

सजल जलद की मधुर कल्पना
कर लेता हूँ कच कलाप में।
छवि लखता हूँ मृदुल गात की
विविध वर्ण मय इन्द्र चाप में॥

स्वाति बिन्दु की चातक सम ले, चित में चाह जिया करता हूं।
तुमसे भाव लिया करता हूँ॥

आशा कुसुम लिये बैठा
रहता हूँ मौन प्रतीक्षा पथ में।
निकल चले जाओ न कहीं तुम
निष्ठुर कञ्चन निर्मित रथ में॥

रूप ज्योति पर मैं पतंग सम, पल पल प्राण दिया करता हूँ।
तुम से भाव लिया करता हूँ॥

---

(१५)

तुमने अपना स्मृति चिन्ह रूप
यह एक विरह का गान दिया ।
कुछ क्षण एकाकी बैठ
हृदय को रोने का सामान दिया ॥

बनगये निशा के स्वप्न दिवस
मिल गया मृत्यु में जीवन रस

जिसमें अङ्कित पीड़ा के शर
एसा आकुल अरमान दिया ।
बन कर उदार प्यासी आखों को
अश्रु कणों का दान दिया ॥

देखा वसन्त का रूप विषम
पतझड़ में था पिक का पञ्चम

आशाओं को जल जल कर
शीतल होने का वरदान दिया ।
चरणों से उठता नहीं शीश
एसा अपूर्व सम्मान दिया ॥

दुख में कुछ दोष नहीं मिलता
सुख में सन्तोष नहीं मिलता

जिसमें विष की ज्वालायें हैं
वह पीने को मधु पान दिया ।
प्राणों को प्रतिपल प्रलय सृष्टि मय
उदय और अवसान दिया ॥

———

(१६)

मिल मिल कर नित्य बिछुड़ जाना
जीवन मे केवल इतना ही रस
परिणाम बिछुड़ जाना तो है
मिल गये कभी इतना ही बस !!

मिल सके कभी न चकोर चाँद
तब भी मिलने को हैं उत्सुक।
अवनी से मिलने को अम्बर
नीचे देखा करता झुक झुक ॥
मिल गये सिन्धु सरिता दोनों
पर मिल कर क्षण में गये बिछुड़।

केवल विश्राम रात को लेकर
विहग गया शाखा से उड ॥

चलदी जब लहर लौटकर
ठहरो ! ठहरो ! कहता रहा कूल ।
पतझड़ में लतिका सूख गई
जी भर कर रोया वृक्ष मूल ॥
रवि रश्मि और प्रस्फुटित कमल
दो घड़ी नहीं मिलने पाये ।
मुरझाया फूल कि डाली की
आँखों में आँसू भर आये ॥
सागर था हाथ उठाये ही
चलदी चन्द्रिका चमक कर क्षण ।
कोकिल ने कूक भरी वन में
आकुल बसन्त के देख चरण ॥
मिल मिल कर रहे बिछुड़ते ही
युग युग के साथी दिवस निशा ।
पश्चिम की ओर चल दिया रवि
रह गई ठगी सी पूर्व दिशा ॥
निकला गति में ले वेग स्रोत
भर नयन देखती रही शिला ।
बादल बिखरा, मिट गई बिन्दु
फिर एक दूसरे से न मिला ॥

है निकट बिछुड़ने की घड़ियाँ
बाकी कितना रहगया दिवस ।
परिणाम बिछुड़ जाना तो है
मिल गये कभी इतना ही बस ॥

(१७)

मुझ को जाना इस ओर
तुम्हारी मञ्जिल है उस ओर प्रिये।
मिल सके कभी हम भी पथ में
कितने ही अधिक प्रयत्न किये ॥

गति मन्द तुम्हारे चरणों की
मैं आगे बढने को उत्सुक।
चलने के पहिले जान सके कब
गमन दिशा हैं अमुक अमुक॥

दोनों पथ मिल सकते न कभी
तब हम भी मिल सकते न कभी।
तुम याद करलिया करो कभी
हम याद कर लिया करें कभी॥

इतनी ही शेष कथा केवल
जीवन में दो दिन मिलें कभी।
जब दूर दूर हम निकल गये
फिर मिले स्वप्न में भी न कभी॥

दो पथी यहां से बिछुड गये
वह पथ भी याद किया करता।
जीवन में कभी न मिलने का
प्रायः उपदेश दिया करता॥

हँस दिये अमिट पद चिन्ह
हमारे पद चिन्हों को जब देखा।
आँखों में आँसू भरलाई
प्रति कूल मार्गों की रेखा॥

एकाकी क्षण हों और कल्पना
जागृत हो जिस समय कभी।
तुम याद कर लिया करो कभी
हम याद कर लिया करें कभी॥

---

(१८)

मेरे उर पर अंकित चित्रों के
रंगों को न मिटाओ तुम।
मेरे भावों की भाषा का
विपरीत न अर्थ लगाओ तुम ॥

अधरों में हैं आबद्ध वचन।
नयनों में डूबी व्यथा गहन ॥

मेरी आशाओं की कलियां
पथ में न व्यर्थ बिखराओ तुम।
मेरा अभिलाषा पूर्ण हृदय
अब पांवों से ठुकराओ तुम ॥

है लोभ दृगों को दर्शन का।
सन्सार विकल मेरे मन का ॥

युग युग की सञ्चित दीर्घ
प्रतीक्षा को न निराश बनाओ तुम।
प्रत्यक्ष नहीं, स्वप्नों में ही
मेरे सम्मुख आजाओ तुम॥
व्याकुल आहों को जलने दो।
ऋतुओं को नित्य बदलने दो॥
कल्पना लोक में नित्य नित्य
स्मृतियां नवीन कर जाओ तुम।
मैं उत्सुक नहीं मिलन का
आग विरह की ही सुलगाओ तुम॥
मेरे उर पर अङ्कित चित्रों के।
रंगों को न मिटाओ तुम॥

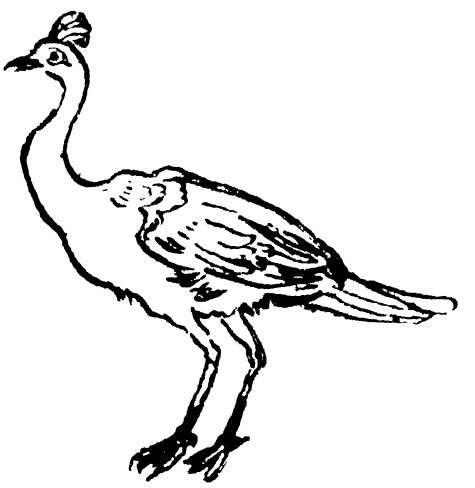

(१६)

रूदन स्रोत के अन्तर में है
बेग भरी सरिता क्या जाने।
अङ्ग शलभ का जला किस समय
दीप ज्योति कैसे पहिचाने॥

कलिका को न विकल कर देते
मर्म भरे मधुकर के गाने।
विद्युत को कितनी सुधि रहती
मेघ लगा है जल बरसाने॥

सम्मुख क्या बसन्त सुषमा के
पीड़ा पतझड़ के अन्तर की।
समय कहां है स्वाति बिन्दु को
सुने कथा चातक के उर की॥

शुभ्र चन्द्रिका को न ज्ञात
क्या हृदय वेदना है सागर की।
भेद नवल लतिका जाने
क्या मूक याचना है तरुवर की॥

रजनी पर तम का अवगुण्ठन
दिवस क्षीण होता है पल पल।
मौन धरा के अधर युगों पर
रोता है नभ का अन्तस्तल॥

करती है उपहास कुमुदिनी
देख ओस कण का उर चञ्चल।
वर्षा दूर खड़ी हंसती है
वन में लग जाती दावानल॥

---

(२०)

कैसे जानूं इन नयनों में
बसता है अमृत या कि गरल।
इन नयनों में कैसा जादू
इन नयनों में है कैसा छल॥

इन में आकर्षण की है कितनी
चुम्बक जैसी शक्ति प्रबल ।
दुष्टता भरी रहती कितनी
तब भी लगते हैं सरल सरल ॥

कितना लज्जा का लिये भार ।
ये उठकर झुकते बार बार ॥

इन नयनों की सीमा में है
सुन्दरता का सन्सार विकल ।
इनकी पलकों में अलसित सा
निद्रित सा है अनुराग नवल ॥

इनमें क्या हैं गुण और दोष ।
इनमें प्रसन्नता है कि रोष ॥

ये सरल चकित मृगियों जैसे
अथवा खञ्जन जैसे चञ्चल ।
इनमें समानता मीनों की
या अङ्कित इनमें नील कमल ॥

ये पङ्कज पत्रों से अशान्त ।
या शक्ति सम्पुटों से प्रशान्त ॥

रजनी का इनमें तिमिर पुञ्ज
या शरद व्योम जैसे निर्मल ।

इनमें रहती प्रज्वलित अनल
अथवा ये हिम जैसे शीतल ॥
इनमें मादकता का निवास ।
या वारि विचियों का विलास ॥

चितवन में चित्रित हैं मराल
या पंक्तिबद्ध उडते अलि दल ।
इनमें चन्द्रिका चमकती है
या लहराता है सागर जल ॥

आकृति इनकी मानो चकोर ।
या इनमें उन्मुख वय किशोर ॥

ऋतुओं का जैसा परिवर्तन
इनमें क्यों होता है प्रति पल ।
भर भर कर जन्म लिया करना
इनमें क्यों सुन्दर हास तरल ॥

नूतन सन्सार बसाने का
इनमें कितना है सञ्चित बल ।
कैसे जानू इन नयनो में
बसता है अमृत या कि गरल ॥

---

(२१)

अधर युग पर जब तुम्हारे
बिखरता है मन्द हास।
घूमता है स्वर्ग का
सन्सार मेरे आस पास॥

इस हँसी में रूप का मैंने
अलौकिक चित्र देखा।
इस हँसी में निहित मानो
तप रसों की रूप रेखा॥

ये हँसी माधुर्य का जिसमें
नियत सङ्केत चञ्चल ।
ये हँसी जिसमें विहरते
मौन भावों के विहग दल ॥

वदन पर विद्युत लता सी
चमक कर ये एक पल में ।
लीन हो जाती हृदय तल के
गहन सागर सलिल में ॥

सङ्कुचित सी भीत सी
लघु रूप वय के आवरण सी ।
प्रकट होती मुक्त मानस
ऊर्मियों के फेन कणसी ॥

हर्ष के आलोकसी
मानो उषा के अवतरण सी ।
क्षणिक आती मन्द मृदु मृदु
अधर पर धरती चरण सी ॥

ये हँसी जिस में कि कोमल
कुन्द कलियां प्रस्फुटित नव ।
ये हँसी जिसमें भरा है
चन्द्र मण्डल का सुधासव ॥

ये हँसी जिसमें चमकती
प्रथम यौवन की चपलता ।
ये हँसी जिसमें छलकती
ओस कण जैसी तरलता ॥

ये हँसी जिसमें कि रहता
लीन लज्जा का सरोवर ।
इस हँसी में है विचित्रित
शिशिर ऋतु का स्वच्छ अम्बर ॥

ये हँसी है हिम कणों की
श्वेत आभा से अलङ्कृत ।
ये हँसी जिसमें कि होते
गीत के स्वर स्वतः झङ्कृत ॥

इस हँसी में व्योम सरिता का
प्रवाहित नीर निर्मल ।
इस हँसी में उमडता
शृङ्गार रस का स्त्रोत कलकल ॥

ये हँसी है राज हन्सों की
अवलियों के समान ।
इस हँसी से रजत पटके
व्योम में तनते वितान ॥

ये हँसी है दिवस मणि की
दिव्य गुम्फित माल जैसी।
ये हँसी है सिन्धु तट के
शुभ्र मुक्ता जाल जैसी॥

ये हँसी करती हृदय में
कनक कमलों का विकास।
ये हँसी भरती हृदय में
प्रेम का लीला विलास॥

ये हँसी भाती पुलक अलोक
जैसी बिखर जाती।
ये हँसी मुझको धरापर
स्वर्ग का वैभव दिखाती॥

इस हँसी के होगये हैं
नयन जब से क्रीत दास।
घूमता है स्वर्ग का
सन्सार मेरे आस पास॥

(२२)

इस अन्तर में आग लगा दो ।
या इसका अस्तित्व मिटा दो ॥

प्रथम जलद का नीर बनूं मैं
तुम उसमें बिजली चमका दो ।
मैं चकोर की चाह बनूँ
तुम अपना चन्द्र वदन दिखलादो ॥
मधुकर से लेलूँ मादकता
तुम आशा के फूल खिला दो ।

मैं धरता हूँ शलभ देह
तुम अपनी रूप ज्योति चमका दो ॥

इस अन्तर में आग लगादो !
या इसका अस्तित्व मिटादो ॥

मैं चातक की चाह बनूं
तुम मिलन सुधा जल कण बरसादो ।
मैं बनता हूँ सुखद स्वप्न
तुम एक नया सन्सार बसादो ॥
मैं केकी का नृत्य बनूं
तुम सावन का सन्देश सुनादो ।
रूप धरूं मैं नव बसन्त का
तुम अपना सौन्दर्य लुटादो ॥

इस अन्तर में आग लगादो ।
या इसका अस्तित्व मिटादो ॥

(२३)

मैं दिवस का दीप हूँ जो बुझ रहा हूँ जल रहा हूँ
वह मुसाफिर हूँ कि मञ्जिल दूर तब भी चल रहा हूँ

यह हृदय तट से उठा है ।
विपुल झन्झा वात कैसा ॥
सुप्त मानस की तरङ्गो में ।
महा उत्पात कैसा ॥
मौन अन्तर के स्वरों में ।
यह मृदुल आघात कैसा ॥
दृष्टि के आलोक में ।
अविराम उल्कापात कैसा ॥
निकट भी जो दूर उस प्रियका
व्यथा मय प्यार लेकर ।
भावना में शुष्क त्रण की
अग्नि का आधार लेकर ॥
लोचनो में क्षणिक मिथ्या
स्वप्न का संसार लेकर ।
गहन सागर वक्ष पर
टूटी हुई पतवार लेकर ॥
अन्त जिस पथ का न ऐसे विकट पथ में चल रहा हूं
मैं दिवस का दीप हूं जो बुझ रहा हूं जल रहा हूँ
सतत जलने का चला हूँ
शलभ से वरदान लेकर ।
चातकी से वारि कण के
चिरविरह का गान लेकर ॥

कुसुम में आबद्ध अलि से
प्रेम का वरदान लेकर ।
मैं चकोरी से चला हूँ
चन्द्रका सम्मान लेकर ॥

जब अनिश्चित एक सीमा में निरन्तर चल रहा हूँ ।
क्या न मैं अपनी लगाई आग में ही जल रहा हूँ,
विकट पथ में चल रहा हूँ ॥

(२४)

कैसा मेरे सम्मुख चित्रित
सुन्दरता का संसार किया ॥
अधरों की स्मित रेखाओं से
मधुभरा स्वर्ग साकार किया ॥

मुख पर अङ्कित लीला विलास ।
कितना वय का उन्मुख विकास ॥

नत ग्रीवा आनत पलकों से
लज्जा का ललित प्रसार किया ॥
कुछ भीगे भीगे वचनो से
मादक स्वर का सञ्चार किया ।

उर में चञ्चलता के अङ्कुर ।
अधरों पर कम्पन मधुर मधुर ॥

ऐसी विचित्रता से तुमने ।
निज भावों का उद्गार किया ॥
अन्तर वीणा के तारों पर ।
कोमल सा एक प्रहार किया ॥

आनन पर द्युति उज्वल उज्वल ।
मोहक चितवन अति चपल चपल ॥

आबद्ध मौन कर अन्तर में ।
मेरे उर पर अधिकार किया ॥
मादक नयनों से सरस रूप ।
रचनाओं का विस्तार किया ॥

उड़ते घन से कुन्तल कलाप ।
कर्णान्त खिचे से भृकुटि चाप ॥

मृगियों की नयन सरलता से ।
तुमने अपना श्रृङ्गार किया ॥
कैसा मेरे सम्मुख चित्रित ।
सुन्दरता का सन्सार किया ॥

❀ बुझें दीपक ❀

(२५)

बुझे दीपकों को न फिर से जलाओ
पुनः इस बुझी आग को मत लगाओ ।
न आओ कभी स्वप्न में भी न आओ
न भूली हुई याद फिर से जगाओ ॥

मुझे दो न विश्वास आशा फलों का
नहीं अन्त कोई प्रतीक्षा पलों का।
कहो बात कोई न बीते समय की
करो सृष्टि अब तुम न नूतन प्रलय की॥

कहां चांद में चांदनी रात उज्वल
कहां स्रोत में नीर का नाद कल कल॥
खिले फूल हैं या लगी आग वन में
कि तूफान से उठ चले हैं पवन में॥

प्रति क्षण बदलते चले जारहे हैं
भवन कल्पना के जले जारहे हैं॥
चहकते हृदय के विहग सोगये हैं
कि दिन रात हैं, रात दिन होगये हैं॥

न उजड़ा हुआ लोक फिर से बसाओ
न मेरे हृदय मार्ग की ओर जाओ
न उस रूप की ज्योति को जगमगाओ
बुझे दीपकों को न फिर से जलाओ॥

— — —

(२६)

दूर क्षितिज पर जलते दीपक से आलोकित प्राण हुआ है।
टूटे छन्दों से मानो कविता का नव निर्माण हुआ है॥

प्रथम कोकिला ने वसन्त के
स्वर में मादक राग सुनाया॥
नव रसाल मञ्जरियों ने
अलियों के मुख में मधु टपकाया॥

ज्योति विन्दु पीने को आतुर
तृषित एक चातक चिल्लाया॥
नभ का आलिङ्गन करने को
कांप उठी पृथ्वी की काया॥

चन्द्र बिम्ब छूने को सागर
की लहरों ने हाथ उठाया।
केकी के स्वर में मेघों के
गर्जन से रति रस भर आया ॥

जाग उठी मेरे अन्तर में तब युग युग की ज्वाला सञ्चित।
पुलक भावनाओं से तब हो उठी विकल आशा अनुरञ्जित ॥

ओस बिन्दु मुक्ता सम चमके।
कोमल कलियों के आनन पर ॥
तरल तारिकाओं की मुसकानों।
का था आलोक गगन पर ॥

कुसुमो का पराग अङ्कित था।
पीत वर्ण वसुधा के तन पर ॥
सौरभ उड़ता था स्वर भरता।
मादकता से मत्त पवन पर ॥

चमकी थी मुसकान तुम्हारी।
धवल चांदनी जैसी उज्वल ॥
डूब गया तब भाव सिन्धु में।
चिर विरहा कुल हुआ हृदय तल ॥

छलक उठी आंखों में मदिरा किसी अनिश्चित मधुर मिलन की
फूट पड़ी अधरों पर रेखा लिये अरुणिमा हर्ष सुमन की ॥

———